Research Paper E-ISSN NO : 2455-295X | VOLUME : 5 | ISSUE : 10 | NOVEMBER 2019

आलोचना के मान : पुनर्विवेचन

डॉ. शिवजी चौहान [1]

[1] साहायक प्रोफेसर,हिंदी विभाग उदाली कॉलेज, बामुनगाँव लंका,   होजाई, असम – 782446

ABSTRACT:

KEYWORDS:

शिवदान सिंह चौहान स्वतंत्रता सैनानी और घुमक्कड प्रवृत्त के व्यक्ति थे। वे देश-विदेश की यात्राएँ करते रहे और समय-समय से आलोचनात्मक लेखों और निबंधों की रचना। इन सभी लेखों एवं निबंधों का प्रकाशन 'प्रभा', 'नया हिन्दुस्तान', 'हंस', 'आलोचना', 'socialist world perspectives' आदि नामक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ। विष्णुचंद्र शर्मा, विश्वम्भरनाथ उपध्याय, पुरुषोत्तम अग्रवाल, मधुरेश एवं भगवान सिंह के अथक प्रयास से आज वह पुस्तकाकार रुप ले सकी है। चौहान जी का रचना कर्म 1936 से 2000 ई. तक विस्तृत है। इनकी महत्वपूर्ण आलेचनात्मक रचना है- 'प्रगतिवाद', 'हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष', 'आलेचना के मान', 'साहित्य की समस्याएँ', 'साहित्यानुशीलन', 'आलोचना के सिद्धान्त', 'साहित्य की परख', 'कश्मीर: देश वे संस्कृति', 'हिन्दी गद्य साहित्य', 'परिप्रेक्ष को सही करते हुए', 'प्रगतिशील स्मृतिप्रवाह' आदि।

शिवदान सिंह चौहान प्रगतिशील आलोचना के प्रवर्तक आलोचक है। प्रगतिशील साहित्य का शुभारंभ इनके लेख 'भारत में प्रगतिशील साहित्य की आवश्यकता' से सभी साहित्यकारों ने माना है। यह लेख 1936 ई. में लिखी गई तथा 1937 ई. में 'विशाल भारत' नामक पत्रिका में प्रकाशित हुआ। "यह विडंबना ही है कि प्रगतिशील आंदोलन के साथ बिल्कुल आरंभिक दौर से जुडे रहने वाले और जीवन के अंतिम दिनों तक प्रगतिशील मूल्यों के साथ खडे रहने वाले शिवदान सिंह चौहान से आज हिन्दी साहित्य जगत लगभग अनभिज्ञ है, और यदि भिज्ञ है तो विवादास्पद लेखक के रुप में स्थापित कर दी गयी उनकी नकरात्मक छबि के साथ।"1

आलोचना किसी कृति की श्रेष्ठता एवं उसकी मूल्य निर्धारण का माध्यम है। वह साहित्य से जीवित है, साहित्य आलोचना से नहीं। आलोचना का कार्य कृति को सही स्थान दिलाना है। शिवदान सिंह चौहान का मानना है-"साहित्य मनुष्य के सूक्ष्मतर अनुभवों और गूढ़तम आकांक्षाओं को भाषा के माध्यम से प्रेरित करने की एक विशिष्ट क्रिया है। साहित्य की किसी कृति द्वारा उसकी अभिव्यक्ति किस कोटी का है, इन सब बातों का मूल्यांकन कर के साहित्य के इतिहास में उस कृति का सही स्थान निर्दिष्ट करना ही आलोचना का आरंभ से लक्ष्य रहा है और आगे भी रहेगा।"2 साहित्य चूँकि समग्र मानव जीवन के प्रतिबिम्वत करता है, इसलिए उसमें जीवन के विभिन्न स्तरीय मूल्यों का संघर्ष भी होता है। इसके सही निष्कर्ष तक पहुचने के लिए आलोचना को व्यापक दृष्टी एवं उदार भावना का होना आवश्यक है। शिवदान सिंह चौहान के अनुसार –"उदार और व्यापक दृष्टी ही आलोचना का मान निर्धारित करने का दायित्व उठा सकती है।"3 अत: हम आलोचना के मानदंड पर शास्त्रीय मतमतांतरों में न फसकर ऐसे मूल्यों पर दृष्टीपत कर सकते है, जो एक ओर पाठक के साहित्य बोध में सहायक हो और दूसरी ओर रचनाकार को स्वस्थ दिशा दे सकें।

आलोचना रचना की होती है और रचना समाजिक संपत्ति है। रचनाकार अपनी अनुभूति, विचार एवं दृष्टिकोण को एकाग्र कर कृति में अभिव्यक्त करता है। अत: आलोचना को भी समाजिक संदर्भ में देखना आवश्यक है। कोई कृति समाज के लिए कितना उपयोगी है, वह आलोचक ही बता सकता है। साहित्य में हर समय नई-नई विचार एवं प्रवृत्तियाँ आती रहती है, उसका अध्ययन विश्लेषण आलोचक ही करता है।

शिवदान सिंह चौहान ने अपनी आलोचना में एक काल्पनिक गाँव का स्थापना की है। वह गाँव स्वस्थ एवं स्वार्थहीन है। मनुष्य-मनुष्यता का रक्षा करता हुआ अन्याय, दूर्नीति, भय और अपमान से कैसे मुक्त हो सकता है, चौहान जी के इस परिकाल्पनिक गाँव में देख सकते हैं—"इस गाँव में पुलिस का प्रवेश निषिद्ध है, क्योंकि यहाँ सब स्त्री-पुरुष बराबर है, सब की बराबर आमदनी है, ऊँच-नीच, छुआ-छुत, गरीब-अमीर का कोइ भेद नहीं है। लोग चोरी-बरजोरी, झुठ और अन्याय से अपरिचित है।इस गाँव में पंडित, मौलवी और पादरी भी नहीं आ सकते। इस गाँव में राज्य की सत्ता का भी दखल नहीं है, पुलिस, धर्म और राज्य मनुष्य को अपमानित करने वाली संस्थाएँ है, वे उसे अपने उस गौरव से बंचित करती है, जिसका वह मनुष्य होने के नाते अधिकारी है। मनुष्य और मनुष्यता के मुक्त विकाश के लिए इन तीनों से मुक्ति जरूरी है।"4

आलोचक शिवदान सिंह चौहान का मानना है आलोचना का कार्य कृति का यथार्थ मुल्य प्रकट करना है। कृति की जो रचना प्रक्रिया है, उसी से आलोचना की सर्जन प्रक्रिया भी जुड़ी है। आलोचक कृति में व्याप्त गुण-दोष का विवेचन रचनात्मक प्रक्रिया द्वारा ही संपन्न करता है। सामाजिक मूल्यों से सनिहित आलोचक कृति की मन: स्थिति पर प्रकाश ड़ालना और वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक परिस्थितियों के प्रभाव को स्पष्ट करना भी आलोचना के क्षेत्र के भीतर ही समझा जाता है।

साहित्य एक ठोस मूर्त वस्तु है, जिसके साथ सहृदय अपनी अनुभूति के माध्यम से एक ऐसे आनंद का अनुभव करता है, जो अन्य वस्तुओं से प्राप्त आनंद से कही अलग है। इसी आनंद को भारतीय मनिषियों ने रसानुभूति तथा पाश्चात् विद्वानों ने सौन्दर्यानुभूति कहा है। अनेक विद्वानों ने सौंन्दर्यवादी साहित्य को केवल मनोरंजन और आनंद का वस्तु मानते हैं, परंतु चौहान साहब की दृष्टि इससे कही अलग है। चौहान जी के अनुसार—"सौन्दर्य या उसकी अनुभूति से उत्तपन होने वाला आनंद एसी अलौकिक वस्तु है, जिसकी मनुष्य के कर्म जीवन से अलग एक आभ्यान्तरिक सत्ता है।"5 साहित्य मानवीय सर्जना है। इसलिए उसका मूल्य मानव मूल्य है साहित्यकार अपनी निजी मूल्यों को व्यापक मानवीय मूल्यों से संपृक्त कर उसकी पुनरव्याख्या और रचनात्मक आलोचना भी करता है। सौन्दर्य अंतरिक एवं अलौकिक सत्ता है, वह वास्तविकता से दूर है, उसकी केवल अनुभूति ही की जा सकती है। यह साहित्य की मूल्यांकन का सही कसौटी नहीं बन सकती। चौहान जी का मानना है—"हर देश और काल का साहित्य मानव जीवन की वास्तविकता को ही प्रतिबिंवित करता आया है, इसलिए सौन्दर्यवादी मानदंड से साहित्य का सही मूल्यांकन संभव नहीं है। वास्तविकता ही उसके मूल्यांकन की कसौटी हो सकती है। मनुष्य के सामाजिक संबंध, विचार, शिल्प ज्ञान और नैतिक मान्यताएँ आदि सभी कुछ वास्तविकता के अंतर्गत ही आते हैं।"6

साहित्य केवल मनोरंजन की वस्तु नहीं है, बल्कि उसमें सामाजिक मूल्यों एवं उचित उपदेश भी सनिहित है जो उपयोगिता की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। यदि सौन्दर्यवादीया रूपवादी दृष्टि को सही मान ले तो निश्चय ही साहित्य में वस्तु का कोई महत्त्व नहीं रह जाता और यदि उपयोगितावादी दृष्टिकोण से देखें तो अभिव्यंजना गौड़ हो जाती है। अत: दोनों दृचियाँ अपनी-अपनी जगह पर सार्थक है। इन दोनों आरजकताओं को सामाधान करने के लिए ही इलियट ने यह सुझाव दिया था कि कृति की साहित्यिकता जाचने के लिए तो रूपगत सौंदर्य के प्रतिमानों को प्रयोग करना चाहिए, लेकिन उसकी महानता का निर्णय करने के लिए साहित्येतर प्रतिमानों का प्रयोग जरुरी है।

REFERENCES

1. नया मानदंड (पत्रिका),पृ.97

2. आलोचना के मान-शिवदान सिंह चौहान,पृ.48

3. वही,पृ.51

4. वही,पृ.60

5. वही,पृ.53

6. वही,पृ.53